शोधामृत

(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की अंतर्राष्ट्रीय सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)
3049-2890 (Print)
IIFS Impact Factor-5.375
Vol.-3; issue-4 (Oct.-Dec.) 2026
Page No- 50-53
©2026 Shodhaamrit
https://shodhaamrit.gyanvividha.com

Author's :
डॉ. नीतू कौशल
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, पंजाब

Corresponding Author :
डॉ. नीतू कौशल
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, पंजाब

संत रविदास जी की वाणी : सामाजिक समरसता का स्रोत

मानव एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहते हुए अपने जीवन को सुचारू ढंग से चलाने के लिए कुछ नियमों और परम्पराओं का पालन करता है और इनके निर्धारण के लिए वह संस्कृति को आधार बनाता है। भारतीय संस्कृति हमें समाज में रहते हुए परस्पर सौहार्द, सामाजिक समरसता, समता, परोपकार,कल्याण और आपसी एकत्व जैसे भावों का अनुसरण करने के लिए प्रेरित करती है। भारतीय संस्कृति में बहुत से ऐसे संत–महात्मा हुए हैं जिन्होंने इन सभी भावों को अपने जीवन में ग्रहण किया है क्योंकि यह सभी मनोभाव सामाजिक उत्थान में सहायक सिद्ध होते हैं। भारतीय संस्कृति में संतो–महात्माओं की एक बहुत लंबी परम्परा रही है जैसे–जयदेव, नामदेव, त्रिलोचन, कबीर, गुरुनानक देव,पीपा, रैदास, सेन, रज्जब, सुंदरदास आदि। धर्मपाल सिंहल भारतीय संस्कृति की इस संत परम्परा पर विचार करते हुए कहते हैं कि,''भारत धर्म प्रधान देश है। यहां ऋषि–मुनि, जोगी–जती, तपी–तपीश्वर, संत महापुरुष एवं गुरु–पीर अपनी आध्यात्मिक दैवी वाणी द्वारा जन सामान्य का मार्ग प्रशस्त करते एवं भूली भटकी जनता को भक्ति पथ पर अग्रसर कर उन्हें नव प्रकाश प्रदान करते आए हैं। उत्तरी भारत में भक्ति का उदय एवं विशाल संत परम्परा इस तपोभूमि की एक महत्त्वपूर्ण विशिष्ट उपलब्धि है।''[1] अर्थात् भारतीय भूमि पर संत श्रेष्ठ स्थान के अधिकारी हैं जिनके द्वारा मार्ग दर्शक की भूमिका निभाते हुए पथ भ्रष्ट हो चुकी जनता का मार्ग प्रशस्त किया जाता है और उन्हें जीवन जीने के ढंग से परिचित करवाया जाता है।

इन सभी महान संतों–महात्माओं ने भारत की पुण्यभूमि को अपने प्रेमपूर्ण व्यवहार, पवित्र भावना, कर्म, मन और विचारों से एक विलक्षण पहचान दिलवाई। गोस्वामी तुलसीदास संतों के सहज व्यवहार के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं,''भगवान तो समुद्र की तरह हैं परन्तु सन्त लोग मेघ की भांति हैं। समुद्र में अथाह जल है किन्तु वह प्यास नहीं बुझा सकता न किसानों को जल दे सकता है किन्तु यही समुद्र जब मेघ रूप में बदल जाता है तब सम्पूर्ण पृथ्वी पर जीवन–वर्षा करता है। सन्त भी प्रेम और ज्ञान की वर्षा करते हैं।''[2] अर्थात् सन्त अपने प्रेम, तप, दया और ज्ञान से मानव समाज को प्रोत्साहित करते हैं।यह मानव समाज में पथ प्रदर्शक की भूमिका निभाते हुए मानव के भीतर प्रेम और भक्ति का रस भरते हैं और समूची मानवता को सद्गुणों को अपनाने के लिए प्रेरित करते हैं।संतों के योगदान और उनके दृष्टिकोण को समझाते हुए धर्मपाल मैनी लिखते हैं कि,''समाज की धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक,आर्थिक व सांस्कृतिक सभी प्रकार की समस्याओं का उन्होंने वैयक्तिक जीवन के माध्यम से समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। उचित साधन और सत्य साध्य पर विश्वास ने उन्हें जो आंतरिक शक्ति प्रदान की थी,उसी के बल पर वे इन समस्याओं से घबराए नहीं। यह ठीक है कि वैयक्तिक सामर्थ्य की सीमाओं के कारण वे इसमें से बहुत कम समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर सके,लेकिन अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि ये विषमतायें उनके व्यक्तित्व को विश्रृंखलित न कर सकीं और वे सदा इनसे जूझते ही रहे–भागे कभी नहीं और इसीलिए हारे भी कभी नहीं। धार्मिक आडंबरों और आवरणों का उन्होंने खुलकर विरोध किया। सामाजिक कुरीतियों को उन्होंने कभी स्वीकार नहीं किया और यथासंभव उन पर भी कुठाराघात किया।''[3] इसीलिए भारतीय

संस्कृति में संतों को श्रेष्ठ स्थान का अधिकारी बताया गया है। संत भारतीय संस्कृति की वह महान एवं गौरवशाली शक्ति हैं, जिनके सान्निध्य में रहकर मानव संसार की सभी बाधाओं को पार करता हुआ अपनी मंजिल की ओर अग्रसर होता है।

संतों ने अपनी वाणी के माध्यम से अपने जीवन के परम लक्ष्य को मानव जन तक पहुंचाया, इन संतों में संत रविदास भी हुए हैं, जिन्होंने समूची मानवता के लिए प्रेम और भक्ति का संदेश दिया। ''सन्तगुरु रविदास जी जहां अपने युग के एक निरीह, निर्भीक, साहसी एवं अनन्य राम–भक्त, समाज सुधारक और देश–उद्धारक सन्त थे वहां वे अपने मध्ययुगीन सन्त समाज में भी अपना एक अद्वितीय और विशिष्ट स्थान रखते थे और आध्यात्मिक साधना के चरमोत्कर्ष पर पहुंचे वयोवृद्ध सन्त थे। रविदास जी भारत के महान् सन्त गुरुओं में एक ऐसे महान् तत्ववेत्ता थे जिन्होंने अपने संघर्षमय जीवन द्वारा सोये हुये भारत को जगाया और सामाजिक संकीर्णता एवं साम्प्रदायिकता की दलदल से बाहर निकाल कर समाज को स्वच्छ एवं स्वस्थ बनाया।''[4] अर्थात् संत रविदास ने एक सच्चे समाज सुधारक की भांति अपनी भूमिका निभाई है। इन्होंने अपने कर्मठ व्यक्तित्व के द्वारा भारतीय जन मानस को सामाजिक संकीर्णताओं की जंजीरों से बाहर निकाला है। इसीलिए भारतीय दर्शन एवं समाज में संत रविदास जी का जीवन और दर्शन समरसता, समानता एवं सामाजिक न्याय का शाश्वत संदेश है।जिन परिस्थितियों में संत रविदास जी का जन्म हुआ उस समय समाज जाति–पाति, ऊँच–नीच और भेदभाव जैसी तुच्छ मानसिकता का शिकार था। इन परिस्थितियों में संत रविदास जी ने सामाजिक समानता से भरपूर महानाद दिया–

''ऐसा चाहूं राज मैं, जहां मिले सबन को अन्न'
छोट बड़ों सभ सम बसैं,रविदास रहैं प्रसन्न।।''[5]

यह विचार सामाजिक और आर्थिक समरसता की पराकाष्ठा को दर्शाता है।संत रविदास ऐसे आदर्श राज्य की कामना करते हैं जहां प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण रूप से खुशहाल जीवन व्यतीत करे।परन्तु वर्तमान समय में मानव इस समरसता पूर्ण नाद की अवहेलना करते हुए निरन्तर निज स्वार्थ की पूर्ति में ही कर्मरत है। आज कर्म का उद्देश्य केवल और केवल अधिक से अधिक उन सांसारिक पदार्थों की प्राप्ति है जो मानव को कुछ क्षण का सुख और आनन्द प्राप्त करवाते हैं, जिसका मूल और बृहद् कारण मानव का आध्यात्मिकता की अपेक्षा भौतिकवाद की ओर उन्मुख होना है। संत रविदास जी ने अपने समरसता पूर्ण विचारों से जन–जन को आप्लावित किया। गुरु रामदास जी उनकी महिमा का बखान करते हुए कहते हैं–

''रविदासु चमारु उसतति करे, हरि कीरति निमख इक गाइ।
पतित जाति उतमु भइआ, चारि बरन पए पगि आइ।।''[6]

इन पंक्तियों में ईश्वर की सर्वव्यापकता और सामाजिक समानता के भाव को दर्शाया गया है।संत रविदास जी का जन्म ऐसे समय में हुआ जब समाज जाति, ऊँच–नीच और भेदभाव की जंजीरों में बंधा हुआ था। ऐसी परिस्थितियों में उन्होंने अपनी विचाराधारा, अपनी बाणी के माध्यम से जन–सामान्य के प्रति जो दृष्टिकोण पेश किया, वह आध्यात्मिक और सामाजिक समरसता पर आधारित है। संत रविदास जी की बाणी, उनका जीवन दर्शन सच्ची व्यावहारिकता का मूल है। उन्होंने मानव को सदैव सच्ची–सुच्ची कमाई का, सत्य बोलने, विनम्रता धारण करने एवं विकारों के त्याग का उपदेश दिया–

''कहि रविदास उदास दास मति, परहरि कोपु करहु जीअ दइआ।''[7]

इन पंक्तियों के माध्यम से संत रविदास जी मनुष्य को क्रोध को त्यागने और दया,सहानुभूति और करुणा जैसे भावों को अपनाने का संदेश देते हैं।क्योंकि यही भाव मनुष्य को सामाजिक समरसता के साथ जोड़ते हैं।अपने सिद्धान्तों और व्यवहार द्वारा उन्होंने मानव को वह जीवन जुगति प्रदान की, जिसका आधार एवं निष्कर्ष केवल मानवता और सामाजिक समरसता की परिकल्पना को पूर्ण करना है। इसके लिए अनिवार्य है कि मानव परपीड़ा को समझे और उसके प्रति सहानुभूति एवं उपकार की दृष्टि रखे–

''सो कत जानै पीर पराई, जा कै अंतरि दरदु न पाई।
अपतन का जो करे बीचारु, तिस नहीं जम कंकरु करे खुआरु।''[8]

अर्थात् जो मानव दूसरों का कल्याण करता है,दूसरों के प्रति दया का भाव रखता है ऐसे मानव को मृत्यु का कोई भय नहीं रहता, उसका प्रत्येक कर्म परोपकार की भावना से पूरित होता है। यद्यपि आज जातिगत, शिक्षा, ऊँच–नीच, अमीर–गरीब, भौगोलिक सीमाओं एवं धर्म आदि की दृष्टि से भेदभाव दिखाई देता है। इन विसंगतियों को संत रविदास जी ने खुलकर प्रकट किया है –

''दारिदु देखि सब को हसै अैसी दसा हमारी।।''[9]

अर्थात् संत रविदास जी अपने विचारों को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि गरीबी देखकर प्रत्येक व्यक्ति गरीब का उपहास उड़ाता है और ऐसी परिस्थितियों में रविदास जी चाहते थे कि प्रत्येक मानव–मानव के प्रति अपने धर्म एवं कर्त्तव्य को समझे और पहचाने। प्रत्येक मानव उस परमेश्वर का ही अंश है और उसके प्रति भेदभाव करना मानवता से भेद करना है–

''तोही मोही मोही तोही अंतरु कैसा।
कनक कटिक जल तरंग जैसा।।
जउपै हम न पाप करंता अहै अनंता।
पतितपावन नामु कैसे हुंता।।
तुम्ह जु नाइक आछहु अंतरजामी।
प्रभ ते जनु जानीजै जन ते सुआमी।।
सरीरु आराधै मोकउ बीचारु देहु।

रविदास समदल समझावै कोऊ।।''[10]

जब मानव इस अन्तर को पहचान लेता है तो 18 सिद्धियाँ उसके हाथों में आ जाती हैं–

''असट दसा सिधि कर तलै सभ क्रिपा तुमारी।।''[11]

उनके विचारों में स्पष्टतः परिलक्षित होता है कि जब तक समाज के प्रत्येक व्यक्ति को बराबरी का सम्मान नहीं मिलेगा, तब तक सच्चा सुख और शांति प्राप्त नहीं की जा सकती। उन्होंने जाति–पाति और छुआछूत जैसी सामाजिक कुरीतियों का खुलकर विरोध किया और समाज को प्रेम और भाईचारे के सूत्र में बांधा।

संत रविदास जी ने मानव को इस सत्य से अवगत करवाया कि उस परमेश्वर का दरबार सच्चा दरबार है जहां फैसला जाति के आधार पर नहीं, अपितु मानव के कर्मों के आधार पर होना है। फिर उसके दरबार में जाति भेदभाव या असमानता कैसे कबूल हो सकती है। उन्होंने मानव जाति को आत्मसम्मान के साथ जीना सिखाया और यह समझाया कि किसी भी प्रकार का शोषण या अपमान स्वीकार करना मानव धर्म के विपरीत है। उनके द्वारा सृजित 'बेगमपुरा' एक ऐसे समाज की परिकल्पना है जहाँ कोई दुखी नहीं, कोई शोषित नहीं, किसी को किसी प्रकार का कोई भय नहीं है, वहां केवल समरसता का स्रोत प्रवाहित है–

''बेगम पुरा सहर को नाउ।। दुखु अंदोहु नही तिहि ठाउ।।
नां तसवीस खिराजु न मालु।। खउफु न खता न तरसु जवालु।।
अब मोहि खूब वतन गह पाई।। ऊहां खैरि सदा मेरे भाई।।''[12]

संत रविदास जी कहते हैं कि ऐसे नगर की परिकल्पना को तभी साकार रूप दिया जा सकता है जब मानव के प्रत्येक कर्म एवं सोच में निरासक्ति का भाव होगा। इसे एक दृष्टान्त के माध्यम से समझाते हुए रविदास जी कहते हैं–

''फल कारन फूली बनराइ।। फल लागा तब फूलु बिलाइ।।
गिआनै कारन करम अभिआसु।। गिआनु भइआ तह करमह नासु।।''[13]

अर्थात् इस पृथ्वी पर सम्पूर्ण वनस्पति (वन, वृक्ष, पौधे आदि) फल देने हेतु ही विकसित होते हैं जैसे ही फल लगता है, वैसे ही फूल खत्म हो जाता है अर्थात् जैसे वृक्ष पर फल लगना निश्चित है, उसी प्रकार वह कहते हैं कि मानव का सांसारिक कर्म करना तय है किन्तु यह कर्म केवल निज स्वार्थ हेतु नहीं होना चाहिए अपितु आत्मिक ज्ञान की प्राप्ति भी इसका उद्देश्य होना चाहिए। जब मानव को अपनी आत्मा का बोध हो जाता है, वह अपने स्वरूप को पहचान लेता है तब उस अवस्था में उसके कर्मों का नाश हो जाता है। यहां कर्म नाश का अर्थ कर्म करने से रुकना नहीं अपितु कर्मों में सकाम भावना का निषेध और निष्काम एवं समर्पण भावना का उदित होना है और जब मन में निरासक्ति पैदा हो जाती है तब सांसारिक पदार्थों के प्रति उत्पन्न मोह क्षण में खत्म हो जाता है तथा मानव उस परमेश्वर की भक्ति में लीन आध्यात्मिकता के शिखर को प्राप्त कर लेता है। जो मानव मुक्ति का, मोक्ष का आधार बनता है अतः मानव को इस दुर्लभ देह द्वारा केवल सत्कर्म ही करने चाहिए तभी मनुष्य का जीवन सार्थक हो सकता है परन्तु मानव अज्ञानवश, अविवेक के कारण इस जन्म की महानता से दूर लोभ–मोह के बंधन से ग्रस्त रहता है–

''दुलभ जनमु पुंन फल पाइओ बिरथा जाति अबिबेकै।''[14]

यहां रविदास जी मानव को स्पष्ट समझाते हैं कि इस कलियुग में इस मानवीय देह द्वारा किया गया नाम–सिमरन रूपी कर्म ही मुक्ति का आधार है कलि केवल नाम आधारा'। वह कहते हैं कि मनुष्य जीवन बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है यह हमारे पूर्व के शुभ कर्मों का फल है इसे हमें व्यर्थ नहीं गंवाना चाहिए।अतः मानव को अपनी बुद्धि, ज्ञान द्वारा कर्म एवं अकर्म पर विचार करते हुए अपनी जीवनयात्रा सम्पूर्ण करनी चाहिए–

''करम अकरम बिचारीअै संका सुनि बेद पुरान।।''[15]

भारतीय दार्शनिक परम्परा में स्वयं के चिन्तन को मानव जीवन में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कर्म माना गया है, जब मानव स्वयं को पहचान लेता है तो वह अपने अच्छे–बुरे को पहचान लेता है तथा वह अपनी कमी आदि को स्वीकार करने में संकोच नहीं करता। गीता में कहा गया है–''ज्ञानाग्नि सर्वकर्माणि भस्मात् कुरुते तथा।।''[16] अर्थात् ज्ञान रूपी अग्नि मानव के सभी कर्मफलों को भस्म करके मनुष्य के कर्म को अकर्म की श्रेणी में ला देती है जिसके परिणाम से जीव मुक्त हो जाता है।कर्म की यही गति मनुष्य का उद्धार करती है। संत रविदास जी भी इसी विचारधारा पर विचार करते हुए स्वयं अपने विषय में कहते हैं–

''मेरी संगति पोच सोच दिनु राती।
मेरा करम कुटिलता जनमु कुभांती।
राम गुसईआ जीअ के जीवना।
मोहि न बिसारहु मै जनु तेरा।''[17]

वस्तुतः संत रविदास जी की संपूर्ण वाणी सामाजिक समरसता के संदेश को समाहित किए हुए है। अतः आज आवश्यकता है कि संत रविदास जी द्वारा परिकल्पित समाज की सृजना उनके द्वारा आदर्शों, विचारों, सिद्धान्तों एवं उपदेशों के अनुगमन से ही सम्भव है। समाज में समरसता स्थापित करता संत रविदास जी का यह संदेश युग–युगों तक प्रासंगिक है। उन्होंने अपने ज्ञान, दर्शन और उदात्त विचारों से युग –युगों के लिए सामाजिक समरसता एवं मानवता का वह पथ सृजित किया है जिसमें केवल लोक–कल्याण की भावना ही परिलक्षित होती है। इनकी बाणी का, विचारधारा का एक–एक शब्द विश्व बन्धुत्व का संदेश है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. धर्मपाल सिंहल,गुरु रविदास जीवन एवं दर्शन,पब्लिकेशन ब्यूरो,पंजाब युनिवर्सिटी, चण्डीगढ़,प्रथम संस्करण 1993,पृ.7
2. कृष्ण गोपाल,भारत की संत परम्परा और सामाजिक समरसता,प्रकाश्न विद्या भारती इलाहाबाद,संस्करण 2004,पृ.52
3. धर्मपाल मैनी,कबीर के धार्मिक विश्वास,भारतेन्दु भवन 15–ए,चण्डीगढ़

4. पृथ्वी सिंह आजाद,युग प्रवर्त्तक संत गुरु रविदास, दीपक पब्लिशर्ज, माई हीरांगेट, जालंधर, प्रथम संस्करण 1983, आमुख से पृ.12
5. पावन मृतवाणी श्री गुरु रविदास जी, पद संख्या 114,पृ.388
6. श्री गुरु ग्रंथ साहिब,लक्ष्मण चेलाराम अंग, 733
7. वही, अंग, 658
8. वही, बसंतु अंग, 1196
9. वही,बिलावलु अंग 858
10. वही, अंग 93
11. वही, अंग, 858
12. वही, अंग, 345
13. वही, अंग, 1167
14. वही, सोरठि, अंग 658
15. वही, अंग, 346
16. वही, श्रीमद्भगवद्गीता,अध्याय चतुर्थ,श्लोक 37
17. वही, अंग, 345

•